International Journal of Applied Research 2019; 5(5): 267-269

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(5): 267-269
www.allresearchjournal.com
Received: 10-03-2019
Accepted: 12-04-2019

Dr. Asheesh Kumar
Assistant Professor,
Department of Sanskrit,
Rajdhani College
University of Delhi,
Delhi, India

DR. Jyoti
Assistant Professor,
Department of Sanskrit,
Shyama Prasad Mukherji
College for Women University
of Delhi, Delhi, India

Correspondence Author:
Dr. Asheesh Kumar
Assistant Professor,
Department of Sanskrit,
Rajdhani College
University of Delhi,
Delhi, India

पूर्वमीमांसा दर्शनः परिचय, उदय एवं विकास

Asheesh Kumar and Jyoti

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में मीमांसा-दर्शन का एक विशिष्ट स्थान है। मीमांसा-दर्शन का प्रधान उद्देश्य धर्म का प्रतिपादन है। इस दर्शन ने वेदों की प्रामाणिकता को सर्वोच्च स्थान दिया और वेदों की नित्यता की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इस एक मौलिक देन से सारा भारतीय वाङ्मय प्रभावित हुआ और प्रायः सभी आस्तिक चिन्तकों ने अन्तिम प्रमाण के रूप में वेद को स्वीकार किया। इस दृष्टि से हमारा सम्पूर्ण वाङ्मय इस दर्शन का ऋणी है। वास्तव में यह सम्पूर्ण विद्याओं का आगार है। आत्मदर्शन का चरम साधन है। आत्मदर्शन से मानव मृत्यु की सीमा से बाहर होकर अमृतत्व प्राप्त कर लेता है - तमेव विदित्वातिमृत्युमैति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय [1].।

मीमांसा शब्द

'मीमांसा' शब्द का अर्थ 'विचार' होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय वाङ्मय में सर्वप्रथम सिद्धान्त-रूप में तर्क का उपयोग यागसम्पादन-विधिके विषय में किया गया। वैदिक साहित्य में यहाँ तक कि मन्त्रभाग में 'मीमांसते' शब्द का प्रयोग मिलता है [2]. ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर यागक्रिया-विषयक विचारविमर्श के अर्थ में 'मीमांसा' शब्द का प्रयोग कौषीतकि जैसे परवर्ती ब्राह्मण ग्रन्थों में अधिक मिलता है -

'Not rarely in the Brāhmanas in later texts like the Kauṣītaki, the term 'Mimāṁsā' occurs as the designation of a discussion on some points of ritual practice [3].

सम्पूर्ण कला-कलापों के मूलभूत वेद का विकृष्ट वाक्यार्थ वर्णन करने के लिए यह द्वादशलक्षणी मीमांसा प्रायः सभी विद्याओं को समयविद्या, न्याय अथवा तर्कविद्या, मीमांसा, तन्त्रविद्या, पूर्वमीमांसा, पूर्वतन्त्र, विचारशास्त्र, अध्वरमीमांसा एवं वाक्यशास्त्र एवं धर्मशास्त्र आदि अनेक रूपों में प्रभावित करती है। इसके ये रूप ही इसकी उपयोगिता एवं प्रभावशालिता को बतलाने में पर्याप्त है। इसीलिए वार्तिककार भट्टपाद ने

> 'मीमांसा तु विद्येयं बहुविद्यान्तराश्रिता।
> न शुश्रूषयितुं शक्या प्रागनुक्त्वा प्रयोजनम् [4]।।'

ऐसा कहकर इसकी उपादेयता सिद्ध की है।

मीमांसा शब्द की व्युत्पत्ति

मीमांसा शब्द पूजित विचारार्थ में प्रसिद्ध है। 'पूजित विचारो वचनो मीमांसा शब्दः [5]' 'मान् पूजायाम् एवं मान् विचारे' सूत्र के द्वारा मान् धातु पूजा एवं विचार दोनों ही अर्थों में प्रसिद्ध है। उसमें 'मान्वधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य [6]।' इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार अनिच्छार्थ में 'मान्' धातु से

'सन्' प्रत्यय एवं अभ्यास का दीर्घ होने पर 'मीमांसा' शब्द निष्पन्न होता है। 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकाविच्छायाम् वा' इस बाद के सूत्र के द्वारा अनिच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय का विधान कर 'मीमांसा' शब्द निष्पन्न करते हैं। इस प्रकार पूजार्थ में एक धातु एवं विचारार्थ में दूसरी धातु का प्रयोग होता है। लेकिन पूजित विचारार्थ में कोई धातु नहीं है। अतः पूजित विचारार्थ में मीमांसा दर्शन कैसे निष्पन्न हुआ है, ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर कल्पतरुकार ने 'प्रसिद्धिबलात् पूजितविचारार्थत्वम्' ऐसा कहकर समाधान किया है।

मीमांसा की उत्पत्ति

मीमांसा का उदय श्रौत कर्मों को नियन्त्रित करने के लिए ही हुआ है – यह एक निर्विवाद तथ्य है। वेद की भिन्न-भिन्न शाखाओं के आधार पर अनुष्ठीयमान भिन्न-भिन्न कर्मों की प्रक्रियायें समय की गति के साथ-साथ अलग-अलग सारणियों में बहने लगी थीं। भिन्न-भिन्न विद्वान् वेद के विभिन्न वाक्यों के अभिप्रायों को लेकर प्रक्रियाओं से विभिन्नता लाने लगे थे – इससे कर्मकाण्ड की वास्तविकता लुप्त होने लगी। इस आवश्यकता ने 'मीमांसा' के उदय की प्रेरणा दी। अनेक प्रतिभाशाली विद्वानों ने इस प्रक्रिया पर नियन्त्रण स्थापित किया एवं वेद वाक्यों का जो अर्थ विभिन्न विचारकों ने किया था – उन्हें अपने विचारों की कसौटी पर कसकर कर्मकाण्ड में काल की गति के साथ-साथ जो अनेकरूपतायें दृष्टिगोचर हो रही थीं, वह एकरूप हो गई। इस प्रकार 'मीमांसा' दर्शन ने न केवल कर्मकाण्ड अपितु वेद के ऊपर आने वाली अप्रामाणिकतारूपिणी महती विपत्ति की रक्षा की है। इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों की यागपरक व्याख्या हैं। यागविधान का उदय कब और कैसे हुआ, ब्राह्मण ग्रन्थों में उनका अवतार कहाँ से हुआ, यह कहना कठिन है। यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में यागसम्पादनविधियों का ही सविस्तार विवेचन प्राप्त होता है, किन्तु वह भी स्वयं में पूर्ण नहीं है। अवश्य ही कोई मौखिक परम्परा रही होगी जिसके आधार पर परम्परा से विभिन्न शाखाओं में निहित यागप्रक्रिया के विवेचन को समझा और समझाया जाता होगा। शनैः शनैः यागविज्ञान में समृद्धि होती गई होगी, तद्विषयक अनेक समस्यायें उठी होंगी जिनका समाधान होता रहा होगा और मौखिक परम्परा द्वारा प्रभूत यागविज्ञान अनेक पीढ़ियों से संक्रान्त हुआ होगा। मौखिक परम्परा के ह्रासोन्मुख होने के भय से उस कर्मकाण्डविषयक ज्ञानराशि की जो ग्रन्थ का आकार देने का प्रयास हुआ वही स्मृतिसाहित्य है [7]। जैसे-जैसे कर्मकाण्ड का प्रचार बढ़ता गया तद्विषयक अनेक समस्यायें भी उत्पन्न हुई।

मीमांसा का विकास

इस मीमांसा शास्त्र का मूल स्रोत संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मसूत्र एवं स्मृतियों में प्राप्त होता है। तैत्तिरीय संहिता में 'इति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः' [8]. ऐसा प्रयोग एवं काठक संहिता में 'उत्सृज्यां नोत्सृज्यामिति मीमांसन्ते' [9]. इस प्रकार प्रयोग प्राप्त होता है। ब्राह्मण भागों में भी इस प्रकार के प्रयोग प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। वेद के अन्तिम अथवा ब्राह्मण भाग के अनुवर्ती परिच्छेद (उपनिषद्) में 'सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति' [10]. ऐसे अनेक वाक्य उपलब्ध हैं। अनुशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि संहिता एवं ब्राह्मण भाग में यह शब्द जितनी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुआ है, उतनी मात्रा में उपनिषद् में नहीं है।

अति प्राचीनकाल में महर्षियों की गोष्ठियों में जो विचार होते थे, उनका अभिधान या परिज्ञान श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ही होता था। उस काल में विषयों के अधिगम के लिए साधन-लिखित पुस्तकादि नहीं थे। किन्तु सभी विषय के परिज्ञाता व्यक्ति थे। उनका एक मात्र साधन श्रोत्रेन्द्रिय ही मानना होगा। इसका परिणाम यह निकला कि जिस प्रकार श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान का 'श्रुति' नाम पड़ा उसी प्रकार दर्शन और शास्त्र का भी श्रुतं नाम पड़ा। श्रवण का फल है – बोध। बोधका फल-आचरण माना जाता है। इस क्रम से सभी शास्त्रों का प्रचार होता है। इसी सातथ्य में 'मीमांसा-शास्त्र' भी आविर्भूत हुआ। अर्थात् महर्षि जैमिनि ने उन गोष्ठियों में सुने हुए एवं निर्धारित विषयों का आविर्भाव सूत्र रूप में किया है। श्रौत स्मार्त कर्मकाण्डियों के अनुष्ठान में सन्देह हो जाने पर वेदवाक्यों का मन्थन कर सन्देह को दूर करते हुए अनुष्ठान किया जाता है। उसी का रूपान्तर है – 'मीमांसा-शास्त्र' जिसके सूत्र प्रवर्तक जैमिनि हैं। यह निश्चित है कि कर्मों का अनुष्ठान अविच्छिन्न परम्परा से होता था और यह भी निश्चित है कि जैमिनि के पूर्व कर्मों के अनुष्ठाता होते ही थे। इसी को हम सम्प्रदाय कहते हैं। सम्प्रदाय का अर्थ – गुरुशिष्य पारम्पर्य से विद्या प्राप्ति है। उस पारम्पर्य से 'मीमांसा-शास्त्र' का प्रचार हुआ। अतएव वेद की परम्परा जिस प्रकार मानी जाती है उसी प्रकार 'मीमांसा' की भी माननी चाहिए।

उदय होने के साथ-साथ इसके विकास में भी अधिक समय नहीं लगा है। लोक एवं वेद दोनों में उपकारक प्रस्तुत शास्त्र के सर्वत्र प्रचार के लिए जैमिनि, शबरस्वामी प्रभृति अनेक महाभागों ने सूत्र-भाष्य आदि ग्रन्थों की रचना की है। यह गतिगहन हैं। परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि शाबरभाष्य के पूर्व मीमांसा सूत्रों के ऊपर कुछ भाष्य अवश्य थे। लेकिन वे भाष्य कहीं भी नामतः या रूपतः प्राप्त नहीं हैं। कुमारिल भट्ट एवं प्रभाकर मिश्र दोनों ने शाबरभाष्य की व्याख्या की है। दोनों ही ने परस्पर विभिन्न रीति को अपनाया है। दोनों में स्वतन्त्रगति, विचारचातुरी एवं विवेचना-शक्ति थी। अतः दोनों का ही मत भाट्ट एवं प्रभाकर मत से प्रसि द्ध हुआ। उनमें शाबरभाष्य की भट्टमत में भट्टवार्तिक, न्यायसुधा, शास्त्रदीपिका, मयूखमालिका, मयूखावली, प्रकाश, भाट्टदीपिका, प्रभावती, चन्द्रोदय इत्यादि अनेक ग्रन्थ एवं उनकी व्याख्याओं एवं व्याख्याओं की भी व्याख्यायें लिखी गयीं। इस रूप से इनका प्रसार हुआ। प्रभाकर मत में बृहती, ऋजुविमला, नयविवेक, नयविवेकदीपिका इत्यादि व्याख्यायें एवं उनकी भी व्याख्यायें की गयीं। भाट्ट मत का जो प्रसार-क्रम देखा गया, वह प्रभाकर मत का नहीं देखा गया। प्रभाकर मिश्र द्वारा शाबर भाष्य की बृहती एवं लघ्वी नाम की व्याख्या की गई। उनमें प्रथम बृहती नामक व्याख्या अत्यन्त अल्पमात्रा में मुद्रित हुई है। लघ्वी का नाम मात्र अवशिष्ट रह गया है।

इस प्रकार साधारण रूप से प्रसार होते हुये भी भाट्टमतानुसारी ग्रन्थ एवं वार्तिकों का यथावत् ज्ञान अल्पबुद्धि के लिए अत्यन्त कठिन है। ऐसा जानकर पार्थसारथिमिश्र ने भाट्टमत का अवलम्बन कर विषय संशय आदि को एकत्रित कर एक रूप में समग्र शास्त्र को संगृहीत किया है - जो 'शास्त्रदीपिका' नाम से व्यपदिष्ट हुई है। यही इस शास्त्र का प्राथमिक ग्रन्थ है। इसके अनन्तर जैमिनीय न्यायमाला, न्यायबिन्दु, भाट्टदीपिका आदि अधिकरण संग्रहात्मक ग्रन्थ प्रादुर्भूत हुए एवं उनकी व्याख्यायें भी की गयीं। तदनन्तर मीमांसा पदार्थ के संग्रहात्मक न्यायरत्नमाला, वेदप्रकाश, न्यायप्रकाश, भाट्टभास्कर, अर्थसंग्रह, मीमांसापरिभाषा आदि प्रकरण ग्रन्थ लिखे गये। एवञ्च इसी परम्परा में मीमांसा का विकसित रूप भी अविच्छिन्न प्रवाह के समान दृष्टिगोचर हो रहा है।

सन्दर्भ-संकेत-सूची

1. य. रुद्रा. 2/18.
2. उत्सृज्या नोत्सृज्यामिति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः (तैत्तिरीयसंहिता 7-5/7/1)
3. ज्ञमपजी रू जीम ज्ञंतउं डपउāṁā . चण1ण
4. श्लोकवार्त्तिक, 13.
5. शाबरभाष्य, पृ.46.
6. पाणिनि, 3/1/6.
7. जीम वसक तनसमे तमहनसंजपवदे इमहंद जव इम बवससमबजमक चतवइंइसल ें जतंकपजपवद ींक पजए ंदक जीपे पज ेममउे हंअम तपेम जव जीम ेउṛजप सपजमतंजनतम (केंहनचजं रू । भ्पेजवतल वf प्दकपंद चीपसवेवचीलए टवसण प्ए चचण370.71)
8. तैत्तिरीय संहिता 5/7/1.
9. काठक संहिता 3/3/7.
10. तैत्तिरीय उपनिषद्, 8 अनुवाक्ें